प्रस्थिति एवं सामाजिक परिवर्तन : महिलाओं के विशेष सन्दर्भ में

डॉ0 विजय कुमार वर्मा,

प्रवक्ता–समाजशास्त्र विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ।

शोध सारांश

भारतीय संरचनात्मक परम्परागत, रूढ़िवादी समाज व्यवस्था एवं पितृ सत्तात्मक सत्ता के तहत पुरूषों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे स्त्रियों को छोटी से छोटी गलती पर उन्हें प्रताड़ित कर सकता है। पुरूष की यह सोच कि स्त्री उसकी निजी सम्पत्ति एवं गुलाम है उसका स्थान पुरूषों की अपेक्षा नीचे है और सारी मान मर्यादा एवं इज्जत की ठेकेदार वे ही हैं के कारण वे अपने विरूद्ध होने वाले हिंसा को पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादा मानकर सहती रही और आज भी सही रही हैं।

इस सच्चाई से कोई इंकार नही कर सकता कि भारतीय समाज में पुरूष और स्त्री के महत्व, स्थान और रूतवे में काफी अन्तर रहा है सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, पारिवारिक आदि सभी स्तरों पर स्त्री को पुरूष से हीन और दुर्बल माना जाता रहा है और यह सोच महिलाओं के प्रति समाज के व्यवहार में भी झलकती है। लेकिन यह भी सच है कि पुरूष और स्त्री के बीच लम्बे समय से बनी हुई खाई को पाटने के सार्थक प्रयास हुए हैं और उनके सकारात्मक परिणाम भी सामने आए हैं। हमारे संविधान में महिलाओं को न केवल पुरूष के समान मौलिक अधिकार दिये गये हैं बल्कि उन्हें परम्परागत बंधनों से मुक्त कराने के लिए विशेष रियायतों और प्रोत्साहनों का भी प्राविधान किया गया है।

KeyWords: *महिलाएँ, प्रस्थिति, संरचनात्मक व्यवस्था, संवैधानिक व्यवस्था ,सामाजिक ,परिवर्तन।*

अधिकांश समाजों में, विशेषकर भारतवर्ष में, महिलाओं और पुरूषों में समानता एक प्रमुख विसंगति है। स्त्रियों के स्तर के बारे में किसी भी पूर्वानुमान के लिए सामाजिक ढाँचे को समझना जरूरी है। सामाजिक संरचना, लोक परमपरा और आदर्श सभी मिलकर पुरुषों और महिलाओं के व्यवहारों से सम्बन्धित सामाजिक अपेक्षाओं को प्रभावित करते हैं और समाज में महिलाओं की प्रस्थिति तथा भूमिका को भी सुनिश्चित करते हैं।

भारतवर्ष में महिलाओं की प्रस्थिति, संस्कृति, क्षेत्र और आयु जैसे विशेष कारकों से निर्धारित होती है। संवैधानिक और कानूनी तौर पर महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका तथा सामाजिक परम्पराओं द्वारा थोपी गई प्रस्थितियों और भूमिका में अंतर का प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे देश में महिलाओं की सामाजिक स्थिति है। पितृसत्तात्मक मूल्यों एवं संस्थाओं पर आधारित होने के कारण महिलाओं की 'अच्छी', 'आज्ञाकारी' और 'त्याग' करने वाली बेटी, बहू और पत्नी के रूप में ही सामाजिक स्वीकार्यता है। उन्हें सामाजिक रीति–रिवाजों व सामाजीकरण के माध्यम से इस प्रकार ढाला जाता है कि वे सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत होने वाली असमानताओं, अधीनता और शोषण आदि का विरोध न करें। पुरुषों की संरक्षकत्व और आश्रय प्रवृत्ति की अधिकता, बहुधा उनके व्यक्तित्व और

निजता के विकास को अवरुद्ध कर देती है। ''महिलाओं की परिवार और समाज में स्थिति मुख्यतया देश के विभिन्न क्षेत्रों की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक और भौगोलिक कारकों से निर्धारित होती है।''

परिवार रूपी संस्था के सर्वाधिक प्रचलित रूप, संयुक्त परिवार, में पितृ पक्ष से सम्बन्धित पुरुषों का एक समूह होता है जिन्हें सम्पत्ति, संयुक्त खर्चों में हिस्सेदारी, आवास तथा रसोई में समान अधिकार प्राप्त होता है। यद्यपि औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और आधुनिकता के प्रभाव के कारण इस प्रकार के रहन–सहन में काफी परिवर्तन हुआ है, परन्तु संयुक्त परिवार की मान्यताएँ आज भी काफी हद तक प्रचलित हैं। इस प्रकार के पारिवारिक ढाँचे में महिलाएँ कठोर प्रतिबन्धों के अधीन होती हैं और निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भूमिका नहीं के बराबर अथवा बिल्कुल ही नहीं होती और वह अपनी सास के सीधे अधीन होती हैं। परिवार में उनकी स्थिति, उनके द्वारा दहेज में लाये गये धन व पारिवारिक अर्थव्यवस्था में उसे पति के योगदान पर मुख्यतः निर्भर करती है।

सांस्कृतिक स्वायत्ता और महिलाओं की प्रस्थिति हमेशा से जाति व्यवस्था से नियंत्रित होती रही है। शुद्धता और अशुद्धता की विचारधारा को वैवाहिक व खानपान संबंधी नियमों द्वारा जातीय प्रतिबद्धता, व्यवसाय और जीवन शैली के आधार पर बनाये रखा गया है। सात्विक शाकाहार, नशे की लत से बच के रहना व स्त्रियों पर पाबंदी कर्मकांडीय शुद्धता के प्रमुख मापदण्ड रहे हैं। नेशनल प्रोफाइल ऑफ वोमेन (यथावत) के अनुसार जातीय प्रथा को बनाये रखने का वैचारिक और भौतिक आधार, धार्मिक ग्रन्थों और पितृसत्तात्मक, पितृवंशात्मक और पितृस्थानीय परिवार की विचारधारा से निर्धारित होता है। इस प्रकार स्त्रियों पर निम्न प्रकार से नियंत्रण रखा जाता है :–

सम्पत्ति एवं संसाधनों में उनको उत्तराधिकारी न मानना;

पर्दा–प्रथा जैसे रिवाजों के द्वारा स्त्रियों को समाज से अलग कर घरेलू जीवनचर्या तक सीमित कर देना;

रीति–रिवाजों और आदर्शों द्वारा उनका सामाजिकीकरण;

विवाह के माध्यम से गृहस्थ जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा हेतु उनका प्रयोग; और

मासिक धर्म सम्बन्धी मान्यताएं, शरीर के प्रति लज्जा बोध की प्रवृत्ति; छोटी उम्र में शादी, केवल महिलाओं के लिए कठोर 'एक पुरुष व्रत' (बहुविवाह प्रथा कुछ ही समुदायों में है) और स्त्री का मूल्यांकन विवाह और परिवार, विशेषकर कई पुत्रों की माँ के रूप में सीमित कर दिया जाना।

उपरोक्त प्रतिबन्ध उच्च जाति की महिलाओं पर निम्न जाति की महिलाओं की तुलना में अधिक कठोरतापूर्वक लागू किये जाते हैं और उन्हें कम सांस्कृतिक स्वायत्ता होती है। परिवार की आर्थिक स्थिति में महत्वपूर्ण भूमिका के कारण निम्न जातियों और अधिकांश आदिवासी समाज की महिलाओं को घूमने फिरने, पर्दे से बाहर रहने, जीवनसाथी के चुनाव में स्वतंत्रता और यदि विवाह सफल न हो तो उसे भंग करने का, अपेक्षाकृत बेहतर अधिकार है। संस्कृतिकरण के माध्यम से अधिकांश निम्न जातियाँ, उच्च जातियों के क्रिया–कलापों, रहन–सहन तथा मान्यताओं का अनुकरण करके अपनी सामाजिक स्थिति को ऊपर उठाने की कोशिश कर रही है। परिणामस्वरूप उनकी महिलाओं की स्वायत्तता भी घट रही है। निम्न जातियों को अपने सामाजिक उत्थान के लिये यह मूल्य चुकाना पड़ा है।

'पुरुष ही वंश चलाते हैं' परिवार के ढांचे की इस मान्यता से भारतीय समाज के अधिकांश तबकों में बेटों की चाहत कुछ ज्यादा

बढ़ी है। दि नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वे (1992–93) ने निम्नांकित पहलुओं जैसे प्रतिरक्षण दर, स्तनपान की अवधि, तीन सामान्य शैशवकालीन रोगों की स्थिति और उनके उपचार की संभावना, 4 वर्ष से कम आयु के बच्चों में कुपोषण की समस्या और नवजात शिशुओं तथा बच्चों के जीवित रहने की दर इत्यादि के आधार पर 19 सर्वाधिक जनसंख्या वाले राज्यों में बेटे को प्राथमिकता दिये जाने का अनुमान लगाया था। उपरोक्त लगभग सभी मापदण्डों पर अधिकांश राज्यों में लड़कियों की तुलना में लड़के अधिक लाभकारी स्थिति में हैं। बेटों की चाह उत्तरी भारत और मध्य भारत में विशेष रूप से ज्यादा है तथा दक्षिणी एवं पश्चिमी क्षेत्रों में अपेक्षाकृत कम है (मुर्थयय्या, चोई, एण्ड राय, 1997)। आदिवासी जनसंख्या में महिलाओं के प्रति भेदभाव अधिक नहीं है। जन्मोपरान्त कन्या शिशु की हत्या तथा कन्या भ्रूण की हत्या जैसी प्रथाएं भी महिलाओं की स्थिति पर बुरा प्रभाव डालती हैं।

हमारी जनसंख्या के अधिकांश हिस्सों में विधवा होना भी एक सामाजिक अभिशाप है और उच्च जाति के हिन्दुओं में तो यह विशेष रूप से प्रभावी है। निम्न जातियों, आदिवासी जनसंख्या तथा मुस्लिमों में विधवाओं का पुनर्विवाह काफी प्रचलित है। भारतवर्ष में महिलाओं की प्रस्थिति पर राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट (1988) के अनुसार विधवाओं के प्रति समाज की सोच, विभिन्न सामाजिक, आर्थिक स्तरों पर भिन्न–भिन्न हैं किन्तु वैधव्य के उपरान्त स्त्री की जीवन शैली में बदलाव, भारतीय समाज के सभी वर्गों में लगभग एक जैसा ही है। पारम्परिक रूप से विधवाओं को अशुभ माना गया है और शुभ कार्यों में उनकी भागीदारी को, आज भी समाज का बड़ा हिस्सा, अवांछित समझता है। सोच में थोड़े बहुत बदलाव के बावजूद भी विधवाओं की दशा हमारे समाज पर एक बदनुमा दाग है। समिति ने बनारस और मथुरा में ऐसी बहुतेरी विधवाओं को शोचनीय दशा में देखा जिन्हें उनके परिवारजनों ने अत्यन्त निर्लज्जतापूर्वक त्याग दिया था और वे छोटे–मोटे काम करके या भीख मांगकर अपना जीवन–यापन कर रही थी।

लिंगभेद और महिलाओं के विरूद्ध अत्याचार भारतीय समाज का घिनौना चेहरा है। यदि हम इस समस्या की गहराई में झाँकें तो हम पाते हैं कि महिलाओं के विरूद्ध अत्याचारों के लिये मुख्यतया भेदभावमूलक वातावरण ही जिम्मेदार है। "पितृसत्तात्मक समाज में सर्वत्र विद्यमान पुरुष प्रधानतापूर्ण वातावरण ने स्त्रियों और पुरुषों के बीच असमान शक्ति सम्बन्ध स्थापित किया है। पितृसत्ता भेदभाव और अन्य कई स्तरों पर महिलाओं के लिए पृथकता और अभाव के लिए जिम्मेदार है। महिलाओं ने भी अपनी अधीनस्थ स्थिति को सामान्य सामाजिक प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार कर लिया है। पुरुषों और महिलाओं में यह जागृति बढ़ रही है कि असमानता, भेदभाव और वंचना ने महिलाओं के कई मूलभूत अधिकारों को उपेक्षित और समाप्त सा कर दिया है" (शारदा गोपालन व मीरा शिवा, 2000)। महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव "पालने से कब्र" तक जारी है जो उसके यौन उत्पीड़न, दहेज संबंधी समस्याओं, उसे पौष्टिक आहार और चिकित्सा सुविधा से वंचित किये जाने और उसे शिक्षा के अधिकार से वंचित रखने के रूप में प्रकट होता है।

जीवन चक्र के दौरान उत्पीड़न और भेदभाव

भ्रूण

– लिंग निर्धारण

– स्त्री भ्रूण हत्या

नवजात शिशु

– जन्मजात शिशु हत्या

– कुपोषण

बचपन (बाल्यकाल)

– शिक्षा और चिकित्सा सुविधाओं का अभाव

– यौन उत्पीड़न

– शारीरिक हिंसा

किशोरावस्था व वयस्क स्त्री

– कम आयु में विवाह

– शीघ्र गर्भधारण

– यौन हिंसा

– घरेलू हिंसा

– दहेज उत्पीड़न

– बांझपन/लड़का पैदा करने में असफलता

– छोड़ दिया जाना

– ओझागीरी की शिकार

– उच्च प्रसव – मातृ मृत्यु

वृद्धाएँ एवं विधवाएँ

– परित्याग

– उपेक्षा– भावनात्मक, सामाजिक और आर्थिक

पारम्परिक मूल्यों में गिरावट, समाज में बढ़ रही अपराधिक प्रवृत्तियाँ, कानूनी प्रावधानों का कमजोर क्रियान्वयन, सूचना माध्यमों में हिंसा के अतिरंजित चित्रण इत्यादि ने समाज में बढ़ रहे उत्पीड़न में अपना योगदान दिया है। इन सबका बड़ा हिस्सा महिलाओं को झेलना पड़ा है। महिलाओं के विरूद्ध विभिन्न प्रकार की हिंसाएँ निम्नवत् हैं :–

- घरेलू हिंसा
- दहेज उत्पीड़न
- मारना पीटना जो चोटों और यहां तक कि मौत में परिणत हो सकता है।
- बलात्कार
- घर, सार्वजनिक स्थान और कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न
- छेड़छाड़
- अपहरण
- वेश्यावृत्ति
- चिकित्सकीय हिंसा

सभी प्रकार की हिंसाओं में चिकित्सकीय हिंसा गुप्त रहती है। इसमें अनावश्यक ऐपीसियोटॉमी, सिजेरियन, ऑपरेशन, असुरक्षित गर्भपात, हानिकारक दवाएं, गर्भनिरोधक, झूठी चिकित्सा संबंधी कानूनी रिपोर्ट, चिकित्सा स्वास्थ्य कानून का दुरूपयोग इत्यादि सम्मिलित हो सकते हैं। हिंसा के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करने में हम पाते हैं कि सबसे ज्यादा जानबूझकर पुरूषों द्वारा की जाने वाली हिंसा से खतरा रहता है। सभी प्रासंगिक सूचनाओं से यह प्रकट होता है कि किशोरियों का यौन शोषण निकट के पुरूष संबंधियों द्वारा ही किया जाता हैं ये भी जानना जरूरी है कि लिंग–हिंसा सभी सामाजिक–समूहों में व्याप्त है और सर्वाधिक हिंसक पुरूष मानसिक रूप से विक्षिप्त हो, यह जरूरी नहीं है, अपितु वे इसे अपनी प्रभुता के अधिकार के रूप में देखते हैं।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा, विशेषकर दलित महिलाओं में, के लिए जातीय व्यवस्था भी जिम्मेदार है। सदियों पुरानी शोषणोन्मुखी जातीय व्यवस्था द्वारा उत्पन्न सामाजिक दशाओं के कारण दलित महिलाएँ उच्च जातीय पुरुषों द्वारा शारीरिक रूप से, सामूहिक रूप से पीड़ित किये जाने के भय से ग्रस्त रहती हैं। इस प्रकार उन्हें लिंग और जाति की दोहरी समस्या का सामना करना पड़ता है। इन पहलुओं के अतिरिक्त भी महिलाएँ विशेष परिस्थितियों का शिकार बनती हैं। जेलों या संरक्षण गृहों में स्थित महिलाओं, विधवाओं, अकेली महिलाओं, मानसिक महिला रोगियों, विकलांग महिलाओं, विस्थापित और शरणार्थी महिलाओं के विरूद्ध अत्याचार कम नजर आने वाले पहलू हैं। इस प्रकार भारत में महिलाओं के विरूद्ध अपराध सर्वाधिक दर्दनाक

और राजनैतिक बहस का मुद्दा है। यद्यपि ये सीधे–सीधे विकास का मुद्दा नहीं है परन्तु इससे महिलाओं का विकास प्रभावित होता है।

भारतीय संविधान में लैंगिक–समानता और भेदभाव से बचाव के लिये कई धाराओं की रचना की गयी है। उनमें, विशेष रूप से, निम्नांकित प्राविधान हैः–

- कानून की निगाह में बराबरी और कानूनों की बराबर रक्षा (अनुच्छेद–14)
- अन्य वस्तुओं के साथ–साथ लिंग के आधार पर भेदभाव, हीनता विशेषतया सार्वजनिक स्थलों पर पहुँच की मुक्त उपलब्धता और राज्यों को महिलाओं के लिये विशेष प्राविधान बनाने के अधिकार (अनुच्छेद–15)
- जनसेवायोजन (रोजगार) के अवसरों की समानता (अनुच्छेद–16)
- राज्य द्वारा स्त्री–पुरुषों के स्वास्थ्य एवं शक्ति को सुरक्षित रखने के लिए अपनी सार्वजनिक नीति का निर्धारण (अनुच्छेद–39–ई तथा एफ)
- कार्य की मानवीय दशाएँ तथा महिलाओं के लिए मातृत्व राहत (अनुच्छेद–42)
- राज्य द्वारा समान नागरिक संहिता बनाने के प्रयास (अनुच्छेद–44)
- महिलाओं के सम्मान के विपरीत प्रथाओं को त्यागना प्रत्येक नागरिक का मूलभूत कर्तव्य (अनुच्छेद–51ए–ई)

संवैधानिक प्रावधानों की अनुरूपता में सरकार ने महिलाओं की रक्षा और उनकी प्रस्थिति में सुधार के लिए विशेष कानूनों को लागू किया है।

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 – किसी भी जाति अथवा धर्म की 18 वर्षीय लड़की तथा 21 वर्षीय लड़का इस कानून से लाभान्वित हो सकते हैं।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955– कुछ नीतियों, विशेषकर सप्तपदी के संपादित होने पर विवाह सम्पन्न माना जाता है। जब तक प्रथम विवाह अस्तित्ववान है, दूसरा विवाह वर्जित है; कानूनी अलगाव और तलाक अधिकार विशेष आधारों पर उपलब्ध कराया गया है जैसे– पागलपन, धर्म परिवर्तन, असाध्य या संक्रामक रोग इत्यादि।

दहेज निषेध अधिनियम, 1961– दहेज मांगना, लेना या देना, राज्य के विरुद्ध एक गैर जमानती, संज्ञेय अपराध है और जिसमें कम से कम 5 वर्ष के कारावास तथा 15,000 या दहेज की राशि के बराबर आर्थिक दण्ड की व्यवस्था है।

बाल विवाह प्रतिबन्ध (संशोधन) अधिनियम, 1976– विवाह की आयु सीमा लडकियों के लिए 15 वर्ष से बढ़ाकर 18 वर्ष तथा लड़कों के लिये 21 वर्ष कर दी गयी है।

हिन्दू दत्तक एवं निर्वाह अधिनियम, 1955– स्वस्थ मस्तिष्क की अविवाहित महिला, विधवा अथवा तलाकशुदा एक बच्चे को गोद ले सकती है।

हिन्दू उत्तराधिकार कानून अधिनियम, 1956– इसमें महिलाओं के लिए, पुरुषों के समान, सम्पत्ति के उत्तराधिकार तथा सम्पत्ति के अधिकार के हस्तान्तरण के अधिकारों को सन्निहित किया गया है।

इसके अतिरिक्त महिला श्रमिकों की सुरक्षा हेतु कई कानून बनाये गये हैं। मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 और समान पारिश्रमिक कानून, 1976 दो ऐसे पर्याप्त एवं विशिष्ट कानून हैं जिनमें शिशु जन्म के उपरान्त छः सप्ताह का वेतन सहित अवकाश; प्रसव के छः सप्ताह पूर्व से ठीक पहले एक माह के लिये श्रम साध्य कार्यों में न लगाना तथा पुरुषों के समान, समान कार्य हेतु समान पारिश्रमिक का भुगतान का प्रावधान है।

अन्य कानूनों में भी कुछ ऐसे प्रावधान हैं जो क्रेच, शिशु को स्तनपान कराने हेतु कार्य

विश्राम, पृथक शौचालय इत्यादि की सुविधा प्रदान करते हैं। गर्भपात अधिनियम, 1971, चिकित्सकीय दृष्टिकोण से उचित होने पर, गर्भपात की अनुमति देता है। प्रसव पूर्व परीक्षण तकनीक (दुरूपयोग, नियंत्रण रोकथाम) अधिनियम, 1994, भ्रूण लिंग निर्धारण हेतु परीक्षण को नियंत्रित करता है। लिंग निर्धारण परीक्षण प्रायः कन्या भ्रूण की पहचान तथा उसके गैर कानूनी गर्भपात हेतु किये जाते हैं। "मानवीय शरीर के विरूद्ध हिंसा, चाहे पुरुष या स्त्री जो भी प्रभावित हो, साधारणतया दण्डनीय अपराध है। इस विषय को महिलाओं में प्रभावित करने वाले कानूनी प्रावधानों, विशेषकर दण्ड संबंधी प्रावधानों को और अधिक प्रभावी और अपराध रोकने में सक्षम बनाने हेतु समय–समय पर पुनरीक्षण एवं सुधार किया जाता है। बलात्कार, अपहरण, दहेज के लिये प्रताड़ित करके मार डालना, छेड़छाड़ व कार्यस्थल पर यौन शोषण सभी महिलाओं से संबंधित होने वाले अपराध हैं जिन पर बहुधा सामाजिक बहस एवं जांच होती है।" (सरला गोपालन, 2000)।

मार्च और अप्रैल 2002 में साम्प्रदायिक हिंसा के दौरान गुजरात में, विशेषकर अल्पसंख्यक समुदाय की निर्दोष औरतों को हिंसा झेलने के लिये याद किया जायेगा। एक अनुमान के अनुसार 2000 मौत के शिकार हुए लोगों में बहुत सी औरतें थीं। इनमें से अनगिनत के साथ बलात्कार किया गया और फिर जलाकर मार दिया गया। जो जीवित बच गयी थीं उन्हें बलात्कार की रिपोर्ट करने में या तो भय या फिर समाज का डर था। इससे उजागर होता है कि भारत में सर्वाधिक क्रूर हिंसा की शिकार महिलाएं ही होती हैं। भारत में औरतों को घर के बाहर भी लगातार हिंसा का सामना करना पड़ता है जैसे– बलात्कार की शिकार, सम्प्रदाय और जाति संबंधी एवं साम्प्रदायिक हिंसा एवं आर्थिक यौन शोषण। लिंग और समाज के अध्ययन में इण्डिया बुक वर्ष 2003, इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ओर द हिन्दू के संयुक्त उपक्रम की रिपोर्ट बताती है कि प्रत्येक 26 मिनट पर एक औरत सतायी जाती है, प्रत्येक 34 मिनट में एक औरत का बलात्कार होता है, प्रत्येक 42 मिनट में यौन–शोषण की एक घटना होती है, प्रत्येक 43 मिनट में एक औरत का अपहरण होता है और प्रत्येक 93 मिनट में एक औरत दहेज के लिए जलाकर मार दी जाती है। भारतीय समाज में बढ़ती साक्षरता ओर अन्य परिवर्तनों के बावजूद भी नर बालक की वरीयता आज भी अपरिवर्तित है। विस्तृत अध्ययनों के आधार पर कल्पना शर्मा (2003) की रिपोर्ट यह बताती है कि एक गरीब महिला द्वारा पारिवारिक आय में घंटों श्रम के रूप में किया गया योगदान पुरुषों की तुलना में कहीं ज्यादा है। शारीरिक श्रम का बोझ औरतों के स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव डालता है। पारम्परिक रूप में महिलाएं सबसे बाद में खाती हैं और सबसे कम खाती हैं। एक अनुमान के अनुसार 50 से 70 प्रतिशत ग्रामीण महिलाओं में खून की कमी पायी जाती है। महिला साक्षरता की दर अब लगभग 45.4 प्रतिशत है और शिक्षा के बारे में आंकड़े सुधार की ओर इशारा करते हैं फिर भी देश के अन्दर इनमें काफी विविधता है। हालाँकि प्रौढ़ शिक्षा और बालिकाओं के विद्यालय में पंजीकरण दोनों के क्रमिक प्रयास ने अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया है। यह आशा की जाती है कि आने वाले समय में जितनी ज्यादा से ज्यादा महिलाएं शिक्षित होंगी यह प्रजनन की दर को भी प्रभावित करेगा। अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों ने महिलाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। कारखानों के बन्द होने के पुरुष बेरोजगार हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप, ये पुरुष वो काम करने लगे जो औरते करती थीं। तब औरतों के पास कोई विकल्प नहीं रह जाता है और वे जीवन निर्वाह करने के लिए कम प्रतिदान पर भी काम या व्यापार करती हैं। बड़ी विकास परियोजनाओं जैसे बांध आदि के कारण विस्थापन से सैकड़ों महिलाएं भी प्रभावित हुई हैं। देह व्यापार को रोकने के लिए कानून और प्रयासों के बावजूद

हजारों युवा लड़कियां बेची जाती हैं और वेश्यावृत्ति के लिये मजबूर की जाती हैं। यह और भी दुःखद है कि वे जवान लड़कियाँ एच0आई0वी0 एड्स के सम्पर्क में आकर मर रही हैं जो कि देश में भयावह दर के साथ फैल रहा है।

पिछले कुछ वर्षों में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी सबसे सकारात्मक विकास है। यद्यपि इनमें से बहुत सी महिलाएँ पुरुष राजनीतिज्ञों की मात्र प्रतिनिधि भर हैं। किन्तु महिलाएँ अपने आप भी तेजी से आगे आ रही हैं। यह घटनाएँ विशेषकर उन राज्यों में हो रही हैं जहां दो या अधिक बार पंचायतों के लिये चुनाव हो चुके हैं या जहां गैर सरकारी संस्थाएं स्वास्थ्य, साक्षरता या मानवाधिकारों के बारे में, औरतों को उनके अधिकारों के बारे में शिक्षित करने का काम कर रही हैं। बहुत से अध्ययनों से निश्चित हो गया है कि ऐसी औरतें पुरुष प्रतिभागी की अपेक्षा विकास में अधिक सकारात्मक सहयोग दे रही हैं। कुल मिलाकर, यद्यपि कुछ सफलताएँ मिली हैं और सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयासों के कुछ परिणाम मिले हैं, लेकिन भारतीय समाज में महिलाओं के प्रति मूलभूत सोच में अधिक बदलाव नहीं आया है। लेकिन भूमण्डलीकरण को निर्बाध रूप से बढ़ने दिया गया तो ये महिलाओं के लिए प्रतिगामी सिद्ध हो सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. मुकर्जी, आर0 के0—द सोशल स्ट्रक्चर ऑफ वैल्यूज,एस0 चाँद एण्ड कं0, नई दिल्ली,2010
2. मुकर्जी, आर0 के0,द डायमेन्शन ऑफ वैल्यूज,जार्ज ऐलेन एण्ड अनविन, लंदन,1976
3. बेत्ते, आन्द्रे,कास्ट, क्लास एण्ड पॉवर, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई 1966
4. योजना जनवरी, 2006, पृष्ठ 5
5. कुरूक्षेत्र,जनवरी, 2006, पृष्ठ
6. पाटिल,ए0डी0,भारत में परिवार और समाज,परिवर्तित,परिप्रेक्ष्य,के0के0,
7. पब्लिकेशन,इलाहाबाद,2005
8. फ्रायड, सिगमंड,द फ्यूचर ऑफ इन डूल्यूजन